ध्यान और ध्यान विधि

तत्सदात्मने नमः

साधक का मुख्य काम है कि अपने मन को संसारी विषयों में न जाने दे। इसका उपाय है कि मन को अपने इष्ट के ध्यान में लगावे, खूब अभ्यास करे। रोज सुबह शाम बैठे, और अधिक से अधिक समय इसमे लगावे। यही साधना है, यही योग है, यही भजन-ध्यान है। इसलिए खूब बैठा करो। हाँ, सीधे बैठने में अगर तकलीफ होती है, तो सुखासन से कर सकते हैं। उसमें भी नहीं बैठ सकते तो खड़े-खड़े हो सकता है। इसमें भी दिक्कत आती है तो पड़े में भी ध्यान हो सकता है। करो, चाहे जैसे करो। मन को रोकने से काम है। शरीर से मतलब नहीं। खास बात है मन को रोकना। खाने में रुके, उपवास में रुके, बैठने से रुके, उसे रोकना है। उसे रोको। और अगर तुम्हारा मन नहीं रुकता तो उसे साधना नहीं कहते, लक्ष्य है मन को रोकना। अगर तुम्हारा मन खड़ा हो जाता है तो तुम साधना कर सकते हो, प्रगति कर सकते हो, लक्ष्य को पा सकते हो। नियंत्रित मन मित्र है, अनियंत्रित मन ही शत्रु है। मन ही बंधन और मुक्ति का हेतु है। जितना ज़्यादा मन रुकेगा, उतनी ज़्यादा क्षमता आयेगी। और अगर मन नहीं रुकता, तो समझ लो कि ज़्यादा और ज़्यादा मेहनत की ज़रूरत है। मन जितना चंचल होगा, उतना ही ज़्यादा क्षमता रुकने पर पैदा करेगा। यह निश्चित है। मन अगर चंचल नहीं होता, तो रुकने पर क्षमता नहीं पैदा करता। इसलिए साधक को मन की चंचलता से उद्विग्न होने के बजाय, उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को लगाना है, एक जगह। यह कैसे एक विन्दु पर खड़ा हो जाय। यही भजन है। भज न, यह मन भागे न। बस एक जगह रहे। अपने इष्ट से इस मन की विभक्ति या अलगाव न हो, यही भक्ति है।

एकान्त में बैठकर भजन करना चाहिए। जो अनुकूल पड़े वह आसन लगाओ। हां, तो कोई भी आसन हो, तुम्हें उसमें बैठने से कमर में दर्द आ गया, या और कहीं दर्द हो गया, या अभ्यास नहीं है- तो उसको बदल दिया जा सकता है। फिर शुरू करो। लेटकर करो-अगर पड़े-पड़े नींद आ जाती है- खड़े-खड़े करो। अगर ऐसे नहीं आता है, तो चलते-चलते करो। करना है, इसमें कोई दिक्कत नहीं। आसन बदला जा सकता है। और यह हम पहले कह चुके हैं, कि साधन अबाधित होना चाहिए। ऐसा नहीं कि हम बैठ जायं, तब तो हमारा ध्यान लग जाय, और जब खड़े हो जायं तो लगे ही नहीं। तब तो फिर माया ने अच्छा न हमसे पीठ फेरी? जब हम ध्यान

करेंगे, तब तो भगवान हमारे पास रहेंगे, हमको बचा लेंगे। और जब खड़े हैं-चलते हैं, खाते हैं और ध्यान नहीं है, तो फिर उस समय तो भगवान रहेंगे नहीं। भगवान नहीं रहेंगे, तो माया आ जायगी। जब भगवान नहीं रहेंगे, तो (हमारे मन में) माया अधिकार कर लेगी। तो ऐसे कैसे काम चलेगा? इसलिये हम बैठे रहें, तो भगवान को लिये रहें। खड़े रहें तो भी, भगवान को लिये रहें। सो जायं तो भी, भगवान ही बैठा रहे अंदर। हम कभी जगह न दें, अन्य को।अगर जगह देते हैं, तो फिर उठाकर टंगड़ी हमें फेक देगी माया। तो ये सब सोचने की बातें हैं। इनको पकड़ लेना चाहिए। हाँ, इतना ज़रूर है कि अगर ध्यान में मन नहीं लगता है, बड़े वेग से दौड़ता रहता है यहाँ वहां की बातों में। तो नाम जपो-श्वासा से। जपते-जपते-जपते जब थोड़ा मन की गति में खुमारी आ जाय, सुस्ती आ जाय (वेग थम जाय) तब फिर ध्यान करो। ऐसा नियम है। तब फिर, ध्यान लग जायगा। और यदि मन दौड़ रहा है पचास किमी. की रफ्तार से, तो एक दम कैसे रुक जायगा? ब्रेक लगाते-लगाते काफी दूर तक जाकर रुकेगा। तो ब्रेक है, नामजप। मन दौड़ रहा है। अभी खाने मे जा रहा है, पीने मे जा रहा है, घर में जा रहा है, स्त्री में जा रहा है, चारों तरफ दौड़ रहा है। अब हम नाम जपने लगे. तो एक ही चीज़ पा गया। तो जो चारों तरफ दौड़ रहा था, वह रुका। और जब नाम जपते-जपते, थोड़ी सुस्ती आ जाए, तो फिर ध्यान में लगा दो। यह तरीका है। और पहले ही ध्यान करोगे तो नहीं रुकेगा। स्पीड में है।

अपने इष्ट का ध्यान हृदय में करना चाहिए। हृदय एक ऐसी जगह है, कि इसमें जिसे बैठा लिया जाता है, वही प्रत्यक्ष होने लगता है। राम जब सीता के वियोग में-उसके ध्यान में थे, तो हर कहीं सीता ही दिखने लगी। लक्ष्मण ने कहा, यह आप कैसी पागल सी बातें करते हैं? यहां सीता कहां है? राम ने कहा-लक्ष्मण, मैं जिधर देखता हूँ, सीता ही दिखाई पड़ती है। तो यह हृदय का ऐसा विधान है, कि इसमें जिसे जमा लिया जाता है, वह सर्वे सर्वा हो जाता है। तो जो साधकों के लिए ध्यान का सबसे अच्छा तरीका है, वह यह है, कि जिसे वह सर्वश्रेष्ठ समझे, उसी का ध्यान करे। चाहे ब्रह्मा का ध्यान करे, चाहे शिव का। चाहे गुरु का ध्यान करे। उसे सुप्रीम होना चाहिये और जब उसका ध्यान करेगा, तो जो उसके गुण-धर्म होंगे, वे सब साधक में आ जाते हैं। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। ये इतने साधन के अंग हैं। साधक को, इनको उपयोग में लाना चाहिये। इस प्रकार से ध्यान बहुत आगे की बात है।

इसमे ध्याता ध्यान और ध्येय ये तीन होते हैं।

ध्येय वह जिसका हम ध्यान करते हैं। ध्याता वह है, जो हर समय ध्येय को धारण करता चले। खाते-खाते, पीते-पीते, हंसते-हंसते, रोते-रोते हर समय, जो ध्येय को धारण किये रहे। यह तो नशा है। अगर नशा हो गया, तो बस फिर। उसे लोग कहते हैं कि पागल है। हां, तो वह कहेगा कि मैं पागल हूँ। पागल, पा गया और गल गया। तो जब ऐसा हो गया, तो वह जहां जायेगा, वहां उसे वही दिखाई पड़ेगा। यही ध्यान है। अब तुम जब ध्यान करने बैठते हो, तो मन इधर-उधर भागता है। अनेक तरह की बातें आती हैं। जो सही ध्यान करने वाले साधक हैं, उनके सामने भी यह बातें आती हैं। इसका कुछ कारण होता है। असल में तुम्हारे रूप को लेकर, किसी की ओर से, कोई विचार वातावरण में आ गया, अथवा तुम्हारे अपने ही पूर्व में किये हुए संकल्प, आकाश में मौजूद रहते हैं, जो ध्यान के समय तुम्हारी फ्रिक्वेन्शी (तरंगगति) में आ जायेंगे। इससे दिक्कत आ सकती है। दूसरे अगर तुम्हारा सुरा-संगम सही नहीं है, तो भी ठीक ध्यान नहीं जमता। हमारा लक्ष्य सही नहीं होगा, तो इसे ध्यान नहीं माना जायेगा। यह जो 'श्वासा चलती है, यह ऐसे नहीं है, कि यहां से ऐसे गयी और ऐसे आयी। नाक के बायें स्वर को चन्द्र-नाड़ी, और दाहिने को सूर्य-नाड़ी कहते हैं। जब दोनों समगति से चलती हैं, तो सुषुम्ना होतीहै। यह ध्यान में सहयोगी है। दिन में ध्यान के समय चन्द्र नाड़ी बाँया स्वर, और रात्रि में ध्यान के समय सूर्य-नाड़ी दाँया स्वर, चलना चाहिये। तब ध्यान में बाधा नहीं आयेगी। इसलिए ध्यान में बैठने के पहले, श्वास ठीक कर लेना चाहिये। इसके अलावा पेट अधिक भरा हो, खाना ज़्यादा खा लिया है, तो ध्यान नहीं लगेगा। आसन ठीक नहीं है, तो भी बाधा आयेगी। ऐसे ही शरीर की या बाहरी अनेक दिक्कतें आती हैं। इन सबको ठीक करके ध्यान में बैठना चाहिये। अब गुरु के ध्यान के सहारे, हमें सुई के छेद से होकर निकलना है। कहते हैं -

धड़ धरती का एकै लेखा, जो बाहर सो भीतर देखा।

तो गुरु को हृदय में बैठाना होगा, हृदय में आसन तो है नहीं। मानसिक आसन बिछाना होगा, गुरु को बैठाना होगा, उनके पास खुद को भी बैठना होगा। उनको प्रणाम करो, दर्शन करो। उनका सिर कैसा है, माथा कैसा है? ऐसी आँखे हैं, ऐसे कान हैं, ऐसे वक्षस्थल, ऐसा पेट है। ऐसा वेश है, इस तरह से बैठे हैं। ऐसे हाथ हैं, ऐसे पैर हैं, ऐसे पैर का अंगूठा है, ऐसे नख हैं। अंगूठे को धो लिया, धोकर जल पी लिया। फिर पूजन करो, स्तुति करो-बस यही ध्यान है। जितना समय इसमें लग जायेगा, वह पुण्यकाल है। इसके विपरीत बाहर के विषयों में जो समय गया, वह पाप काल है। एक मिनट का पुण्य काल, एक करोड़ मिनट के पाप काल का शमन

कर देता है। तो इस तरह से ध्यान करते-करते, आगे का रास्ता मिल जाता है। और यह जो बाहर-बाहर की पूजाअर्चा है यह अलग है।

देखो, एक भगत रहे, भगवान के प्रेमी भावुक। भगवान की मूर्ति पूजते थे। फिर एक बड़ा मन्दिर बनवाया। उसमें भगवान की मूर्ति पधराई। यज्ञ भण्डारा किया। तमाम लोग आने-जाने लगे। तो भगत अब पुजारी बन गये। मन्दिर खूब चला। लेकिन कुछ दिन बाद, मन्दिर-मूर्ति का आकर्षण कम हुआ। लोग कम आने लगे। पहले जैसे चढ़ावा न आने लगा। वहीं पास में एक फक्कड़ महापुरुष रहते थे। अपने में मस्त। कोई आता-जाता, तो उनको गाली-गलौज करके भगा देते। उनकी ख्याति सुन कर ज़्यादा लोग आने लगे। भीड़ टूट पड़ी। महात्मा गाली-गलौज करते, तो भी भीड़-भाड़ बढ़ती जाती थी। यह देख कर मन्दिर के पुजारी ने अपने भगवान के सामने कहा- हे भगवान! मेरे ही आँखों के सामने, मंदिर में सवा मन का भोग लगता था। छप्पन-भोग लगता था। अब सवा सेर भी मुश्किल है। उधर वह बाबा, लोगों को गाली देता है, तब भी लोग घेरे रहते हैं। तो फिर क्या हुआ, कि एक दिन एक दिगम्बर महात्मा के वेष में भगवान मन्दिर में आये। बोले पुजारी जी दण्डवत, दण्डवत पुजारी महाराज! पुजारी ने भी कहा, दण्डवत बाबा। कहो किधर से आये? वो बोले, हमारी यहां पास में सन्तों की जमात पड़ी है। रात को एक बड़ा अचम्भा हुआ, कि सुई की नोक के बराबर छेद से, अस्सी हजार ऊंट निकल गये। पता नहीं कहां चले गये। हम सारे महात्मा, उन्हीं ऊंटों को ढूंढ रहे हैं। पुजारी ने सुना। बोला, हट कहीं का झूठा बाबा। अरे! कहीं सुई की नोक बराबर छेद से अस्सी हजार ऊंट निकल सकते हैं? साधु होकर झूठ बोलते हो। बाबा घूम कर उस फक्कड महात्मा के पास गये और यही बात कही। तो वह अपनी मस्ती में मस्त महापुरुष, अपने नशे से कुछ उतरे। यह नशा होता है। जिसे यह नशा छा जाता है, वह फिर उसी में मस्त रहता है।

तो वह बाबा, उसकी बात सुनकर जोर से हंसे और बोले, अरे कौन सी ऐसी अचम्भे की बात हैभाई। यह जो सुई की नोक बराबर छेद से निकल गये ऊंट। भगवान की मर्जी से तो, बिना छेद के ही निकल सकते थे। उसकी शक्ति से क्या काम नहीं हो सकता? तब वह नागा, भगवान विष्णु के रूप में प्रकट होकर पुजारी से बोले। देखो, तुम जीवन भर मर गये पूजा करते-करते, लेकिन तुम्हारे अन्दर यह विश्वास नहीं आ पाया, कि भगवान ऐसा भी कर सकते हैं। इस महात्मा को देखो, सबको गाली देता रहता है, न पूजा करता है न कुछ करता है, फिर भी उसका विश्वास ही फलीभूत हो रहा है।

विश्वासं फल दायकम्

तो इस तरह से विश्वास आ जाये, तो ठीक हो जाता है। भृंगी कीड़े की तरह। भृंगी कहीं से कीड़े को पकड़ ले आता है, और मिट्टी का घर बनाकर, उसमें रख लेता है। फिर उसे भिन-भिन आवाज करके भृंगी बना देता है। अपने रूप में ढाल देता है। तो मन, एक कीड़े की तरह है। इसमें हम जो कुछ भी भर देंगे, वह वैसा ही रूप ले लेता है। इसी के लिए यह सब ध्यान, भजन, साधन, सब बनाया गया है। यह झूठा संसार है। झूठ को झूठ से मारा जाता है। जैसे कहीं कोई झूठ-मूठ भूत खड़ा हो जाता है, तो वह झूठे मंत्रों-जंत्रों से जाता है। झूठ को झूठ से मारा जाता है। 'टिट फार टैट',जैसे को तैसा। तो इस प्रकार से विश्वास पैदा करना है। अपने अन्दर एक चार्ट बनाना पड़ेगा। जबरदस्ती, विश्वास के आधार पर, यहीं हृदय में। सब ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि के रूप। रावण का रूप दस सिर का। दस इन्द्रियां ही उसके दस सिर हैं। ऐसे ही एक सम्पूर्ण चार्ट अन्दर तैयार हो जाता है। यही सब करना है।

इंगला, पिंगला, ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया।

झींनी-झींनी बीनी चदरिया। बीनत-बीनत मास दस लागै।।

तो इस प्रकार से यह चदरी बीननी पड़ती है, इसमें कुछ समय लगता है। बीनते-बीनते बन जाती है। इसका अर्थ अच्छी तरह समझ लो-

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति; पूजा मूलं गुरोर्पदम्

मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्, मोक्षमूलं गुरोर्कृपा।।

तो पहले गुरु के सामने समर्पण करके, अपनी मन की शंकाओं का निराकरण कर लें। और जब मन साफ हो जाये, तो ध्यान करें। जब हम ध्यान में बैठें, तो प्रसन्नता होनी चाहिये। किसी बड़े आदमी से मिलते हो, तो थोड़ा मुस्कराते हो। चाहे बनावटी ही हो। इसी प्रकार जब ध्यान में जाय, तो प्रसन्नता होनी चाहिये। चाहे बनावटी हो। सचमुच में हो, यह अच्छी बात है। और यदि कोई ऐसा प्रसंग आ गया, कि उसकी मन में चिन्ता करनी पड़ रही है, तो ध्यान में बैठना ठीक नहीं। क्योंकि मन को वह चिन्ता पकड़े रहेगी। मन तो एक ही है, चाहे उसे ध्यान में लगाओ, चाहे चिन्ता में लगाओ। कुर्सी तो एक ही है, चाहे उसमें भगवान को बैठा दो या चिन्ता को। इस तरीके से पहले मन को ठीक कर लो। मन में खुशी, खूब खुशी होनी चाहिये। सौभाग्य मानना चाहिये, कि मुझे भगवान के समीप होने का, ध्यान-भजन का, यह क्षण मिल रहा है। प्रसन्नता मन में रहेगी, तो ध्यान के सहयोगी भाव जाग्रत होते हैं। बाधक भाव दबे रहते हैं। चिन्ता आदि निष्प्रभावी रहते

हैं। ध्यान में मन ठीक से लगता है। सेवा करनी पड़ेगी। तुम्हारेपास बहुत से साधन हैं। सब कुछ करना पड़ेगा। भजन तो एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है। भगवान कोई आदमी नहीं है, कि बुला लिया और आ जायेगा। तुम ने जो जनम-जनम से बेइमानी की है, हाथ ने की है, आँख ने की, जीभ ने की है। मन ने की है। तो इन सबका जो कर्जा है, उसे चुकाना पड़ेगा। इसी के लिए सेवा करे, जप करे, ध्यान करे। और जब कर्जा चुकता हो जायेगा, तो भगवान तो तुम्हारे हृदय में बैठा है। यह सब करते-करते आगे गुरु बताने लगते हैं, कि अब ऐसा करो, यह करो, यह करो। तो फिर उसकी प्रगति होती जायेगी। नाम, रूप, लीला, धाम,सब मिलते जायेंगे। सेवा, भजन के द्वारा पुण्य का धन बढ़ाना है। जो जनम-जनम का कर्जा है, पाप रूपी कर्जा माया का, उसे पटाने के लिए, पुण्य इकट्ठा करके, कर्जा से छूट जाना है। जहां कर्जा चुकता हुआ, तो माया के यहां से छुट्टी हो जायेगी। वह कह देगी, कि भगवान! तुम्हारे फलां आदमी का कर्जा चुकता हो गया। बस फिर भगवान के पास होने का रास्ता खुल गया। जप, ध्यान, भजन, सेवा, योग, साधना, यह सब इसी के लिए है। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबंध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये सब बहुत से अंग हैं। यह सब सब्जेक्ट हैं। जैसे पढ़ाई के लिए जब शुरू में स्कूल जाता है लड़का, तो उसे सब सब्जेक्ट पढ़ने पढ़ते हैं। 10वीं 11वीं में फिर चार-छः सब्जेक्ट रह जाते हैं। एम.ए. में पहुंचते-पहुंचते एक विषय रह जाता है। केवल एक से भी हो सकता है। केवल जप करने से भी काम हो सकता है। लेकिन 24 घण्टे जप में मन न लगेगा, तो फिर बेइमानी करेगा। इसलिए जब जप में न लगे, तो सेवा में लगा दो। तो इस तरह से धीरे-धीरे कर्जा चुकता जायेगा और हम भगवान के क्षेत्र में आ जायेंगे। इस तरह से धीरे-धीरे क्षमता आ जायेगी।

महापुरुष के पास एक ऐसी इनर्जी होती है, ऐसी कला होती है कि वह इन दो के झगड़े से निकल जाता है। यह जो सजातीय और विजातीय है सुख और दुख, दिन और रात यह जो द्वन्द्व है सर्कुलेशन, जिससे यह संसार चलता है, इसकी वह एडजस्टिंग कर ले जाते हैं। इससे वो परे हो जाते हैं। इसका मूल कारण यह है, कि एक तो अच्छा है, एक बुरा है। इसी से दुनिया चलती है। एक हमें अच्छा लगता है, एक बुरा लगता है। तो जिसने अच्छा लगने वाले का त्याग कर दिया है, वह बड़ी अच्छी गति को प्राप्त होता है। महापुरुष में सबसे महत्वपूर्ण बात है, कि वह त्याग का त्याग करता है। त्याग के त्याग का मतलब होता है, कि जब बुराई का त्याग करके अच्छाई को प्राप्त किया तो अब जो हमने अच्छाई प्राप्त की है, उसका भी

त्याग कर दें, और समत्व को ले लें। यह है त्याग का त्याग। यह संत महापुरुष ही कर पाते हैं। इसलिए उनकी क्षमता अलग है।

तो यह जो अन्तःकरण है, यह अंतःकरण एक ऐसी जगह है कि जब हम इसमें गुरु को देखते हैं, तो जो गुरु का गुरुत्व है, वह इसमें रह जायेगा। हमारा अन्तःकरण एक ऐसी चीज़ (उपकरण) का नाम बोला जाता है, कि जो उस जगह पर पहुँचता है–उसको वह कैच कर लेता है। जो वहां पहुँचता है उसको वह रख लेता है। तो ध्यान का मतलब यह है, कि उसके (इष्ट के) अन्दर जो इनर्जी है, ताकत है, जो शक्ति है, उसे हम रख लेते हैं। वह इनर्जी हमें प्राप्त करना है, इसलिए हम उसका ध्यान करते हैं। बस वही काम करेगी। अगर प्रेजेन्ट में हम गुरु को पकड़े हुए हैं, तो प्रश्न ही नहीं उठता कि काम आ जाय, क्रोध आ जाय, लोभ आ जाय, मोह आ जाय। उसके रहते नहीं आएंगे। इसीलिए गुरु का ध्यानसबसे ऊँचा माना गया है। गुरु की जगह हम स्वयं अपना वीटो–विल पावर आजमायेंगे, तब धोखा खाएंगे। और गुरु को जिसने बैठा लिया, तो विजय ही विजय है। तो फिर गुरु आने नहीं देगा किसी बाधा को। यह प्रश्न ही नहीं उठेगा। और हल हो जायेगा। क्योंकि जब गुरु को देखेगा साधक, तो मन जायेगा नहीं–और जब नहीं देखेगा, तब जायेगा। जाएगा, तो सोचेगा आज हमारी कितनी प्रगति हुई, आज हमारा मुनाफा कितना हुआ जो हमने भजनरूपी विजनेस (व्यवसाय) किया। देखा कि आज चौगुनी प्रगति हुई। तो झट उसके साथ खुशी आएगी, और खुशी की बगल से ईगो (अहंकार) भी चला जायगा। और ईगो घुस जायगा तो टंगड़ी ऊपर हो जायेगी, मूड़ी नीचे हो जायगी। यह है साधक का रोना–झगड़ना। इसलिए गुरु को हृदय में लिए रहना ही ठीक है।

गरु भगवान के चरणों का ध्यान करते हैं। क्योंकि उसमें ज़्यादा क्षमता है। मस्तक के बजाय चरणों में। अब जैसे कहते हैं, गुरु महाराज के चरणों में प्रणाम। गुरु महाराज के दासों के चरणों में प्रणाम। भगवान के दासानुदासों के चरणों में प्रणाम। तो इसका मतलब और अधिक क्षमता की बात है। जितनी दीनता का भाव बढ़ेगा, उतनी ज़्यादा क्षमता बनती जायेगी। तो गुरु के चरणों में प्रणाम, यह साधारण है। और दासानुदासों के चरणों में प्रणाम, यह असाधारण है। इसमें ज़्यादा क्षमता बनती है। अपनी दीनता और भगवान की महत्ता, जिसमें ज़्यादा से ज़्यादा बने। अधिक से अधिक आदर सूचक जो हो, उसमे क्षमता अधिक होगी। इसलिए चरणों का महत्व विशेष होता है।

गुरु का ध्यान इसलिए करते हैं, कि वह जाग्रत होता है। उसके अंग-प्रत्यंग में वह शक्ति जाग्रत होती है। वह एकदम तैयार एनर्जी है। और दूसरे लोगों के पास, रहती नहीं। इसलिए जब ध्यान किया जायेगा, तो उनकी एनर्जी से साधक को मदद मिलेगी। गुरु में चुम्बक की तरह यह क्षमता होती है, कि तुम्हारे मन को पकड़ ले। तो जब हम उनका ध्यान करते हैं, तो हमारी क्षमता अगर काम नहीं करती, तो गुरु की ताकत से हमें मदद मिलती है। और अगर ध्यान को और बारीक करते हैं, तो सही ध्यान मिल जायेगा। और अगर स्थूल ध्यान किया जायेगा, तो हाथ देखेंगे-तो हाथ अलग है, आँख देखें-तो आँख अलग है, मुँह देखेंगे-तो मुँह अलग है। इस तरह से फिर वही बीमारी तैयार हो जायेगी, जिससे हम भागना चाहते हैं। इसलिए ध्यान के लिए ठीक तरीका यही है, कि अपने इष्ट को हृदय में लेकर उनके सामने हमेशा-हमेशा के लिए अपना समर्पण करें, और उनके चरण के अंगूठे का नख देखें। उसमें भी एक तिल जैसा बिन्दु देखें। उसमें मन स्थिर करने का अभ्यास करें। फिर धीरे-धीरे उस तिल को, और छोटा करके देखने का अभ्यास करें। मन को स्थिर करने का यह तरीका है। और महापुरुष का ध्यान हम इसलिए करते हैं, कि जब हम उनका ध्यान करेंगे, तो उधर उन्हें पता लग जाता है। वह पता लगा लेते हैं, कि इतने टाइम कौन उन्हें ध्यान में पकड़ रहा है। यदि साधक सही रूप में हृदय में पकड़ लेता है, तो निश्चित ही कम्युनिकेशन (आंतरिक सम्पर्क) हो जाता है। और जब वह जान जायेंगे, तो अपनी इच्छा से हमें राइज (उन्नत) कर सकते हैं। उठा सकते हैं। यही तरीका है- उठा देने का । यह सब रहस्य है। वैसे कोई नियम इसमें इस तरह से लागू नहीं होते। यह अलौकिक क्षेत्र है, इसमें लौकिक नियम-कानून लागू नहीं होते। ईश्वरीय क्षेत्र में, देश-काल से परे की बातें हैं। रहस्यमय है यह सब। यह अलौकिक क्षेत्र है, लौकिक नियमों का सहारा लेकर नहीं चलता है। अब जैसे, नाम जपते हैं, तो बैखरीसे राम, राम, करोड़ों बार जपने से जो फल मिलता है, मध्यमा से एक करोड़ जपने से मिल सकता है। पश्यंती से एक लाख से ही मिल सकता है। परा से एक बार नाम लेने से ही मिल सकता है।

बारक नाम जपत जग जेऊ।

होत तरन तारन नर तेऊ।।

बारक नाम-एक बार नाम लेने से, तर जाता है, और दूसरों को तार देने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। वह कैसा नाम है? तो वह उल्टा नाम है। राम, राम, राम

यह जप है, इसका उल्टा अजप, अर्थात् अजपा जो जपा न जाये। यही अजपा उल्टा नाम है, जो बाल्मीकि ने जपा था।

उल्टा नाम जपत जग जाना।

बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

लोग जानते तो हैं नहीं। इसलिए कह देते हैं मरा, मरा जपते रहे। ऐसा नही है। ऋषियों ने बता दिया, श्वासा ऊपर जाती है तो रा, नीचे आती है तो म। जप बाहर होता है। उलट कर अन्दर की ओर होने लगा। इस तरह बाल्मीकि ने उल्टा नाम जपा। अजपा जपा तो ब्रह्म के समान हो गया। अरे, यह कोई बड़ी बात नहीं है। यह तो मामूली सी चीज़ है। क्या नहीं हो सकता, क्या नहीं हो सकता है? इस तरीके से यह सब विधियां हैं। महापरुषों ने जो बता दिया है। लेकिन यह समझ में आती हैं, तो इनकी सही एडजेस्टिंग होनी चाहिये। खाली बातों से कुछ होता नहीं। असली बात है, मन की गति को धीरे-धीरे कम करना। ध्यान में, या जप में, पहले पहल मन बार-बार भागता है। बार-बार पकड़ कर फिर उसी में लगाओ, मन की गति कुछ धीमी होगी। फिर और धीमी होगी। यह सब प्रैक्टिकल चीज़े हैं। बताने से क्या होता है? यह बड़ी बारीक बातें हैं।

एक ज्ञेय है, एक ज्ञाता है। साधक जो है। वह उस ज्ञेय के सामने अपना समर्पण करता है। तो यह कई तरीके से हो सकता है। यह तो साधक की अपनी रुचि है, जैसे करे। अपने इष्ट को हृदय में बैठा कर, उनके चरणों में समर्पण करे, और अनुनय विनय करे कि- "हे भगवान! क्या मैं इतना पापी हूँ, कि आप मुझे स्वीकार नहीं कर सकते है? मुझे अपनी शरण में, अपने चरणों में, जगह नहीं दे सकते हैं। अब मैं कहां जाऊं भगवान! मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। मुझे स्वीकार कीजिए। मुझे अपने स्वरुप में मिला लीजिए। इसके लिए जो उपाय हो सके, आप ही करें। भगवन मैं आपका ही हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ। मैं आपको छोड़कर कहां जाऊं? मेरी रुचि आपके चरणों में लग गयी है। आप भगवान हैं, सर्व समर्थ हैं, मेरा उद्धार कीजिए। आप मेरे इस मन को, अपने चरणों में लगाइये। यदि आपने कृपा करके, इस मन के कंचन को, अपने स्वरुप की कसौटी पर कस कर खरा नहीं बनाया, तो क्या कभी इसका सुधार होगा। यह मेरा मन माया में ही लगा रहने वाला है। यदि आपने इसे पकड़ कर अपने चरणों में नहीं लगाया, तो कभी मेरा उद्धार न हो सकेगा। यह मन माया में ही फंसाए रहेगा। मैं नीच से नीच, निकृष्ट से निकृष्ट हूँ। फिर भी आपकी महान कृपा है, कि मुझे आपने अपनी शरण दे दी

है। हे भगवान! मैं यह नहीं कहता, कि मैं आपके लायक हूँ। मैंने सुना है, कि एक सदन कसाई था। एक रैदास था, इन सभी का उद्धार किया है आपने। तो क्या ये सब किस्से झूठे हैं? क्या आपकी शरण में, मेरा उद्धारनहीं हो सकता?" इस तरह से, अपने को छोटा बनाते-बनाते, और उन्हें महान से महान बनाते-बनाते, काम बन जाता है। अपने अहंकार को समाहित करने का, यही तरीका है। इगो को इसी तरह से खतम किया जाता है। और कोई दूसरा तरीका नहीं है। अपने को छोटे से छोटा बताना, और हल्का से हल्का बनाना, यही तरीका है। अपने को छोटा से छोटा बनाते-बनाते इतना हल्का होते जाना, कि पारदर्शी हो जायेगा। आकाशवत् हो जायेगा। तो स्वीकृति मिल जायेगी। हम पारदर्शी ही तो, नहीं हो पाते हैं। आकाशवत् नहीं हो पाते। आकाश कोई वस्तु नहीं। पृथ्वी नहीं, जल नहीं, गैस नहीं, निर्मल आकाशवत् होना है। कैसे हो सकते हैं आकाशवत, यह बताओ?

अब जैसे कोई लाठी मारे, उस आदमी को। वह कैसे बचत करेगा? या तो लाठी-डण्डा से रोकेगा, नहीं तो हाथ से रोकेगा, या तो पीठ कर देगा उस ओर। तो जो निरवयव है, वह है सबसे मूल्यवान। उसी में है सब-दारोमदार। इसलिए देखना चाहिये, कि हमारे हृदय में जो हमारे इष्ट का स्थान है, उस पर कोई मोह रूपी रावण न बैठ जाय। अज्ञान रूपी धृतराष्ट्र न बैठ जाय। काम, क्रोध, लोभ आदि कोई दानव न बैठ जाय। यह ऐसी जगह है, जहां हम जिसे देखते हैं, वही हम हो जाते हैं। यह चीज़ मन से तैयार होती है। इसलिए ध्यान का अर्थ दूसरा हो जाता है। गुý को सर्वोपरि मानते हैं। अल्टीमेट (परमसत्ता) भगवान मानते हैं, अन्तर्यामी मानते हैं, तो फिर उसी को देखते-देखते-

देखते-देखते क्या से क्या हो गया।

खुद ही बन्दा खुदा हो गया।।

तो गुरु को देखते-देखते, रूप तो हट जायेगा, और गुरु के पास जो कशिश है, ताकत है, जिससे वह गुरु बना है, वह हमें मिल जायेगी। फिर वह हमें अपने में मिला लेगा। फिर,

न गुरु न चेला, पुरुष अकेला।

फिर,

छाओ-छाओ हो फकीर गगन कुटिया।

गगन कुटिया का मतलब आकाशवत् रहने से है। अभी तो हम पाँच तत्वों की कुटिया इस शरीर में रहते हैं। जब शरीर का भाव न रह जाय, देह का अध्यास

खतम हो जाय, तब वह स्थिति आती है। यह स्थिति मिलती कैसे है, कि जब हम ध्यान का अभ्यास करें। ध्यान में गहराई से जब मन लग जाता है, तो बाहर का कुछ भी भान नहीं रह जाता। जैसे कोई गहरी निद्रा में सो जाता है, तो शरीर का भी भान नहीं रह जाता। इसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। गहरे ध्यान में सुषुप्ति की स्थिति बनती है। जब वही ध्यान का नशा जाग्रत और स्वप्न में भी निरंतर छाया रहता है तो यह तुरीय अवस्था है। यह बहुत आगे की बात है। तो जब आकाशवत् स्थिति मिल जाय तो उसी को कहा गया है, गगन कुटिया।

तो यह सब बारीक रहस्य की बातें हैं। इस तरीके से भक्ति रोते-रोते की जाती है। फिर जब साधक को कुछ उपलब्धि हो जाती है, तो उसमें आत्मबल आ जाता है। वह फिर माया को ललकार देता है। जैसे गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में लिखा है,

अब मै तोहि जान्यो संसार।

बांधिन सकसि मोहि रघुवर के बल, प्रगट कपट आगार।।

पहले तो इतना रोए, इतना रोए हैं भगवान के लिए। तो यह भक्ति का एक पीरिएड (समय) होता है। और जब साधक को, कुछ मिल जाता है। भगवान थोड़ा अंगुली पकड़ा देते हैं। तो फिर अंदर से बल मिल जाता है। गर्व आ जाता है, फिर उसे शंका समाधान अन्दर से होने लगता है। हायर लेवल के जो साधक होते हैं, उनको बाहर से पूछने की ज़रूरत नहीं रहती।

तो हम ऐसा साधन खोज कर अपनायें, जो सार्वभौमिक हो। जो सब जगह पहुंच सकता हो। सब पर लागू हो। जहां-जहां ईश्वर की गतिविधि हो, वहां तक उसकी भी व्यापकता हो, ऐसा साधन सबसे अच्छा रहता है। और जो खण्डित है। देश करके बाधित है। काल करके बाधित है। यहां भजन होता है, बाहर जाने पर, वहां जाने पर, वहां नहीं होता। यह भजन अच्छा नहीं माना जायेगा। सबेरे भजन में बैठे तो मन लग जाता है, और दोपहर में मन नहीं लगता। तो यह भजन अच्छा नहीं माना जायेगा। इस तरह से जगह या देश के बदल जाने से, समय के बदल जाने से, जो बाधित हो जाये, वह ठीक नहीं। हम जहां बैठें वहीं मन रुक जाये। जब जिस काल में बैठें मन की गति को रोक दें। यह भजन अच्छा माना जाता है। और जो देश, काल, व्यक्ति, परिस्थिति से बाधित हो, वह उत्तम नहीं माना जायेगा। जो साधन भजन देश, काल, भाषा, आदि की सीमाओं से बाहर, सार्वकालिक-सार्वभौमिक हो, सीमाओं से बाहर हो, वह उत्तम माना जायेगा। उससे ईश्वर को पाने में सफलता मिलती है। क्योंकि ईश्वर सीमा रहित है। सार्वभौमिक है। इसलिए सार्वभौमिक साधना

ही ईश्वर से मिला सकती है। यह जो आध्यात्मिक साधना या मानस साधना का तरीका है अन्तर्जगतीय तरीका – यह देश काल अबाधित है सम्प्रदाय अबाधित है। मानव मात्र के लिए, सबके लिए लागू होने वाला तरीका है। यह संतों का तरीका सही तरीका है, सार्वभौमिक तरीका है। इसलिए करने वाले तो बहुत करते हैं, सबेरे भजन करने बैठते हैं फिर दिन में दूसरे काम, बिजनेस वगैरह होते हैं, फिर रात में दूसरे काम, सोते समय। यह भजन की गति, अच्छी नहीं कही जायेगी। भजन की गति निरन्तर होनी चाहिये। पहले सुबह बैठो, सुबह–शाम बैठो, जब समय मिले तब बैठो, धीरे–धीरे इसे बढ़ाते रहो। अन्त में ऐसा होना चाहिये, कि अनवरत भजन चलता रहे। ऐसी युक्ति मिल जाये, कि निरन्तर भजन होता रहे। बताने वाले तो तुम्हें बतायेंगे, कि लगातार 24 घण्टे श्वासा में भजन करना चाहिये। लेकिन भजन ऐसे नहीं किया जाता। भजन का तरीका जो हम बताते हैं, वह अलग है, और जो शास्त्रीय ज्ञान है, वह अलग है। भजन तुम जितना भी करो, 10 मिनट करो, 1 मिनट करो लेकिन उतने में ही वहां पहुंच जाओ, जहां निशाना है, जो लक्ष्य है। भजन चाहे 10 घण्टे करो, 24 घण्टे करो, 1 मिनट करो लेकिन उसमें मन को निशाने पर पहुंचना चाहिये। जो सबसे महान है, सबसे परे है, उसमें मन को टच होना चाहिये। अगर उससे मन टच होता है, तो श्वासा खड़ी हो जायेगी। और श्वासा खड़ी हो जाने पर, पीछे का फार्म जल जायेगा। और जल जायेगा, तो तुम मुक्त हो गये। फिर बोलो, हंसो, खेलो, कूदो, मस्ती काटो, ऐसा सिद्धान्त है इसका। लेकिन यह बताने से, यह होता नहीं है। लोग कहते हैं, भगवान ऐसा है। कैसा है भगवान–

बिनु पग चलै, सुनै बिनु काना, कर बिनु करै करम विधि नाना।

वह चलता है लेकिन पैर नहीं है, खाता है लेकिन मुंह नहीं है, सुनता है लेकिन कान नहीं हैं। मतलब है कि निर्लेप स्थिति में महात्मा की रहनी कुछ ऐसी ही होती है। कि वह खाता है लेकिन खाने के संस्कार नहीं बनते। सुनता है लेकिन सुनने के संस्कार नहीं बनते। हम जो बता रहे हैं, तुम लोगों की समझ में नहीं आता है। समझ में आता है तब, जब साधन में उतनी गति हो। क्योंकि प्रैक्टिकल बातें हैं। ऐसे समझ में नहीं आतीं। अब आदमी कोई पत्थर का तो है नहीं, जो 24 घण्टे श्वासा में लगा रहे। लेकिन बताया ऐसे ही जाता है। लगते–लगते जब भगवान की कृपा से मन की गति रुक जाती है। ध्याता ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी में, एकतानता जहां आयी और अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ा, बस हो गया काम पूरा। इस पर हम तुम्हें एक दृष्टांत बताते हैं, सुनो ध्यान से।

एक राजा था। उसकी एक रानी थी। महल में रहते थे। उनके शौचालय की सफाई करने, मेहतर आया करता था। एक दिन उस मेहतर ने, कहीं से उस रानी को देख लिया। मुग्ध हो गया। अब वह दिन-रात, उसी रानी के रूप का चिंतवन करता रहता। ऐसा मुंह है, ऐसी नाक है, ऐसी आँख है आदि। ऐसा चिंतवन इतना तीव्र हो गया, कि वह मेहतर पागल की भाँति हो गया। उसकी पत्नी ने उसका हाल जाना-समझा, और रानी के पास गयी। रानी से बताया, कि मेरा पति तो आप के रूप सौन्दर्य में पागल हो गया है। मैं कहीं की न रही। रानी ने सुना, और समझदार थी रानी। उसने सोचा, कि तीव्र आकर्षण किसी का कहीं हो जाये, तो वह तो कुछ भी कर सकता है। उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब भी आ सकता है। ऐसा विचार करके रानी ने उस मेहतरानी से कहा, कि देखो, तुम जाकर अपने पति से कहो, कि रानी ने कहा है, कि तुम नदी के किनारे जा कर बैठो। आँख मूंद कर हृदय में रानी को देखता रहे। फिर मैं आ कर उससे मिलूंगी। मेहतरानी लौटकर घर आयी। मेहतर से रानी की बात कही। तो वह तुरन्त भाग कर गया नदी के तट पर, और बैठकर रानी का ध्यान करने लगा। तुरन्त ही समाधि लग गयी। चारों ओर हल्ला मच गया। लोग देखने आने लगे। ऐसा महात्मा है। जो भी सुनता भागा चला आता। राजा को भी खबर लगी। उसने भी महात्मा के दर्शन की तैयारी की। रानी को भी साथ लिया। नदी तट पर पहुंचे। रानी तो सब रहस्य जानती थी। एकान्त करके, सबको अलग करके, उसके पास जाकर बोली, आँखें खोलो। देखो, जिसके लिए तुम बैठे हो, वह रानी मैं आ गयी हूँ। उसे तो समाधि की मस्ती मिल गयी। असली महारानी मिल गयी थी। तो होता ऐसे है।

जब मन एक जगह रुक जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय में जब एकतानता आ जाती है, तो जैसे पुरुष और स्त्री के संयोग से गर्भाधान होता है। बच्चा पैदा हो जाता है। वैसे ही मन के एकाग्र होने पर, बुद्धि में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब आ जाता है। गर्भाधान हो जाता है। और फिर अन्दर ही अन्दर भगवान पैदा हो जाता है। उसका (मेहतर का) हुआ क्या? रानी के ध्यान में तन्मय होने से ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकतानता हो गयी। ध्याता मन, जो ध्यान करता है, ध्येय-जिसका ध्यान करता है, और इन दोनों का जो ज्ञान, ध्यान है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान-ध्याता, ध्येय और ध्यान-यह तीनों की त्रिपुटी एक हो जाए, तो उस समय जैसे ऋतु काल में, पुरुष के संयोग से स्त्री को गर्भाधान हो जाता है, वैसे ही एकतानता की स्थिति में, साधक की बुद्धि में, अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है, और गर्भाधानहो जाता है। उस स्थिति में बुद्धि को, ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा जाता है। 'ऋतम्भरातत्रप्रज्ञा'। उसमें

अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब धारण करने की क्षमता होती है। और फिर थोड़ा समय लगता है। ईश्वर का जन्म हो जाता है। लेकिन एकतानता ज़रूरी है। और ऐसी एकतानता हो, कि भगवान उसे तस्दीक कर दे। परीक्षा लेकर तस्दीक कर दे। थोड़ा सा टाइम लगेगा, जब बुद्धि खड़ी हो जायेगी, तो चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जायेगा, तो ईश्वर की पैदाइश हो जायेगी। तो इस तरीके से, उस मेहतर को क्या हुआ कि वह एकाग्र हो गया था। एकाग्रता की ही ज़रूरत होती है। एकाग्र हो जाये, चाहे गुरु के चरणों में हो जाये या और कहीं। एकाग्र होना चाहिये। लेकिन गुरु के चरण वन्दनीय हैं। परम्परा से हमारे संस्कारों के अनुकूल हैं। इसलिए उनसे ज़्यादा लाभ होगा। और नहीं तो, तुम पत्थर में एकाग्र हो सकते हो, तो उससे भी काम हो जायेगा। लेकिन उसके लिए नए संस्कार बनाने पड़ेंगे। राम नाम क्यों जपते हैं? क्योंकि परम्परा चली आ रही है। उसके संस्कार हैं पहले से, इसलिए सरलता रहती है। गुरु के चरणों की मान्यता है। नई कोई चीज़ लेकर चलेंगे, तो उसके लिए संस्कार बनाने पड़ेंगे। बहुत सी इनर्जी खर्च होगी। तो उसको क्या हुआ? मन एकाग्र हुआ। ध्याता, ध्येय और ध्यान में एकतानता आयी। बुद्धि में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब आ गया। और रानी तो छूट गयी कहीं। उसे मिल गई महारानी। अब वह निहाल हो गया। अन्दर ही अन्दर मस्त हो गया। उसे ऐसा लगा, कि पता नहीं अन्दर क्या है, कि भरपूर है सर्वत्र–वही–वही। अब यहां रानी–आनी सब उसी में खो गयी। सर्वत्र वही, सम्पूर्णता से भर गया है। रग–रग में दिखाई पड़ रहा है। तो जब रानी ने कहा, कि आँख खोलो, मैं आ गयी रानी, तो उसने कहा कि अरे! कौन सी रानी? यहां तो असली रानी आ गयी है। तो अब यह जो मन है, वही है– मेहतर। और जो सुप्रीम है ध्येय, उसे ईश्वर कहो,आत्मा कहो, कुछ कहो, वही है रानी। तो जब मन अपने ध्येय में ऐसा तल्लीन हो जाये, कि अपने को उसमें विलीन कर दे।

ध्याता, ध्यान और ध्येय में एकतानता हो जाय,यह सही ध्यान कहा जायगा।

तत्प्रत्ययैकतानता ध्यानं।

तो जैसे चित्त चूना है, और हृदय में ध्यान हल्दी है। दोनों मिल कर एक तीसरा रंग बनाते हैं। अनुभूति का रंग। चूना अपनी सफेदी छोड़ देता है, और हल्दी अपनी पीलाई छोड़ देती है। दोनों मिल जाते हैं, तो लाल रंग आ जाता है।

रहिमन प्रीति सराहिए, मिलेहोत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून।।

हमारे महाराज कहा करते थे–

माई धोबिन बाप चमार, तेहिकर जनमल हम बनवार

ध्यान ही धोबिन है। चित्त चमार है। चित्त से भजन किया जाता है, ध्यान किया जाता है तो तीसरी चीज़ तैयार होती है। चित्त सही ढंग से ध्यान में लग जाय तो बनवार अर्थात् ईश्वर की पैदाइश हो जाती है।

भजन जितना मजबूत होगा, उतना ही यह संसार कमजोर पड़ेगा। भजन कमजोर होगा, तो यह बलवान होगा। इसकी तो उल्टी खुराक है। इसलिए यह सबसे ज़रूरी है, कि जितना हम करें–सही करें। बैठ कर राम–राम, वाणी से जपो, फिर मौन हो जाओ। श्वासा में मन को खड़ा कर दो। और देखो ऊपर जाती है तो रा, नीचे जाती है तो म। मन देखता रहे, बोलो न, जपो न। मन को खड़ा करके ध्यान लगाओ। जब मन इसमें लगा रहेगा। तो भजन बलवान होगा। और वह संसार निर्जीव हो जायेगा। और जब मन संसार में रहेगा तो वह (संसार) बलवान हो जायेगा, और भजन निर्जीव हो जायेगा। तो इस श्वासा की गति में मन को लगाना है। आँखे बन्द कर लो और बस सुनो, और बस देखो। रा म, रा म, ओ म, ओ म चौबीस घण्टें में 21608 श्वास चलती है। हर श्वासा में एक नाम आता है।

मन मूरख सोवै महा चेतन को नहीं चैन।

इसको तो चैन नहीं है, और मन हमारा बाग रहा है, बाग रहा है– विषयों में। इसलिए यह विषय बलवान हो जाते हैं। मन को दबा लेते हैं। तो इससे साधक उबर नहीं पाता, और उसे ग्लानि आ जाती है। ग्लानि होने पर, भजन–साधन छोड़ बैठता है। साधक गिर जाता है। यह अक्सर देखने को मिलता है। नियम यह है, कि इसमें हमें लगना है। चाहे हम 10 मिनट करें, लेकिन सही करें। नाम में मन को लगावें। जब मन हटे, तो फिर पकड़ कर लगावें, फिर हटे, फिर लगावें। यही तो राम–रावण का युद्ध है। वह हमको खींचे, हम उसको खींचें। इसी का नाम युद्ध है, इसी का नाम संघर्ष है, इसी का नाम तपस्या है, इसी का नाम भजन है। राम–रावण युद्ध कहो। महाभारत युद्ध कहो, चाहे देव–दानव युद्ध कहो। सजातीय–विजातीय युद्ध कहो। चाहे साधना कहो। चाहे भजन कहो। ये सब एक ही क्रिया के नाम हैं। तो इस तरीके से यह हमारी कमजोरी का कारण है, जो हमें ऐसी परेशानी आती है। इसलिए हमें बारीकी करनी है। यह समझ लो, कि मन कहीं जाये न। अब अगर यह भी समझ में नहीं आता, तो बस जैसे शरीर में तिल है, इसी तिल को देखो। उसी में मन को खड़ा कर दो, मन को वहां से हटने न दो। दूसरे किसी विषय के साथ मन जाये ही न। तो बस, झट वह कमजोर हो जायेगा। इस तरह से कमजोर होते–होते,

और मन हमारा रुकते-रुकते, गुरु भगवान की कृपा हो जायेगी, तो सब काम हो जायेंगे। इतना सा तरीका है। बस इसको पकड़ लेना है बारीकी से, तो मानों भगवान पार कर देंगे।

हाँ, कोशिश यह करना चाहिए कि हमारा ध्यान इतना परिपक्व हो, इतना अविचल हो, इतना चिन्ता रहित हो, इतना संकल्पों का त्यागमय हो, कि ध्यान हमारा सही लगे। अब हम नहीं जानते कि हम सो रहे हैं, कि जाग रहे हैं। कि हम ध्यान कर रहे हैं। हमारा लक्ष्य एक होना चाहिए। अब यह किस ढंग से दिखाई पड़े। हमारा तो इष्ट एक है, कि हम ध्यान करें। और 'ध्येय एक स ध्यान।' ध्येय रहे, ध्याता ध्यान नहीं। ज्ञेय रहे ज्ञाता, ज्ञान न रह जाय। जब ध्येय रहेगा, जब तुम्हारे पास ज्ञेय रह जायेगा, तो उसका जो परिणाम है-यह जो प्रश्न आता है, यह वह जाने। तुर्या में पहुंचाता है, यह वह जाने। सुषुप्ति में पहुंचाता है, वह जाने। हमारा तो ध्येय एक होना चाहिए। और वह ध्येय, ध्येय। ध्येय के अलावा कुछ नहीं।

ध्यान में गुरु के चरणों के अंगूठे को देखते हैं। तो देखने वाला, जो हमारा मन है, वह ध्याता। जिसे देखते हैं, वह है ध्येय। और इन दोनों का जो ज्ञान है, इनकी जानकारी है, वह है ध्यान। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। ध्याता, ध्येय और ध्यान। गुरु महाराज को हृदय में इसलिए बैठाते हैं, कि उनमें जो कशिश है, जो क्षमता है, वह हममें भी आती है। यह हृदय एक ऐसी जगह है, जहां हम जिसे जमा लेते हैं, वही-वही सब जगह दिखने लगता है। काम को बैठा दो, तो काम ही काम दिखेगा। स्त्री को बैठा दो, तो स्त्री ही स्त्री दिखेगी। इसलिए गुरु को बैठाते हैं, क्योंकि वह सुप्रीम है। उन्हें बैठाने से, उनकी ओर से हमें कुछ मिल जायेगा। इसलिए बैठाते हैं। उनमें क्षमता है, कि वह हमें अपने में (समाहित) कर लेते हैं। इसलिए गुरु के चरणों में, उनके अंगूठे का ध्यान करें। उसमें भी सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दु पर मन को लगायें। लगाते-लगाते मन को शून्य कर दें। यह सबसे अच्छी ध्यान की स्थिति बनती है। मन शून्य हो जाये। अब यह साधक की बुद्धि की बात है, कि उसका मन श्वासा में लगता है, कि गुरु के ध्यान में लगता है। जिसमें लग जाय। श्वासा में न लगे, तो ध्यान में लगाये। ध्यान में न लगे, तो श्वासा में लगाये। श्वासा का जप भी, ध्यान में सहयोगी होता है। ध्यान से श्वासा को मदद मिलती है। एक जगह मन लग जाये, तो हर जगह लग सकता है। हृदय में ध्यान हो सकता है, तो बाहर भी हो सकता है। इसलिए गुरु के ध्यान की एक विधि है। वह जानना चाहिये। हृदय में ध्यान करने का मतलब इतना ही है, कि गुरु भगवान के पास जो है, वह सब हमें दे डालें। वैसे तो ध्यान, एक देशीय नहीं है। सार्वभौमिक है। ऐसा नहीं है कि वह

देश करके बाधित हो, काल करके बाधित हो, यह हम पहले ही कह चुके हैं। लेकिन हृदय में ध्यान का मतलब यही है, कि गुरु की कशिश हमारे में आ जाये। क्योंकि हृदय चुम्बकीय क्षेत्र है, इसलिए ध्यान के लिए हृदय को ही बताया जाता है। वैसे तो त्रिकुटी मे भी ध्यान करने को कहा गया है। नाभि कमल में भी बताया जाता है। कहीं भी हो सकता है, लेकिन हृदय का ध्यान अच्छा है। इसका नियम यह है, कि हम ध्यान करें, उसका ध्यान करें, जो सबसे अधिक क्षमतावान हो। गुरु से हमें कुछ लेना है। इसलिए अगर वह कुछ दिक्कत भी पैदा करे, तो भी सेवा करके उनसे ले लें। गाय का दूध आदमी निकालता है, तो उसकी लात भी उसको खानी पड़ती है, पर वह छोड़ता नहीं। ऐसे ही जो भी हो, गुरु को पकड़ना चाहिये। सेवा करके, उनसे उनकी चीज (क्षमता) को लेना चाहिये।

अनाहत जो चक्र है। यह ऐसा चुंबकीय क्षेत्र है कि इसमें जिस महापुरुष का ध्यान किया जाता है, उसकी महानता को, वह चुम्बक पकड़ लेता है। और जब पकड़ लेगा, तो हमको ताकत देगा। इसलिए वहां महापुरुष का ध्यान किया जाता है। इसी प्रकार हम अगर ओ-म, ऐसा देखते हैं, यह विधि पुरातन है। ओ--कहने पर श्वासा निकली तो जो अन्दर खराबी भरी है-वह निकल गई। और म--में मुंह बंद हो गया। अब तो खराबी अन्दर न जाने पाएगी। रा निकल गई, म मुंह बंद हो गया। तो जो बीमारी थी निकल गई, फिर आ नहीं पाई। और इसी में अगर हृदय प्लेटफार्म बन गया, चिंतवन रूपी यात्री बैठ गए। इच्छा रूपी ट्रेन बन गई। संकल्प-विकल्प डिब्बे बन गए-और, आ रही है, जा रही है। अब वहां कोई सुपाड़ी खा रहा है, कोई तमाखू खा रहा है, कोई बीड़ी पी रहा है। तमाम गंदा कर देते हैं। तो अनाहत अगर गंदा हो गया, तो भगवान फिर कैसे आऐगा? क्या इन्फेक्शन (संक्रमण) में आएगा? इसलिए शुद्ध होना चाहिए। गंदा न होने पाये। जो अन्दर-वही बाहर, निष्कपट -

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।'

तो इसलिए श्वासा एक तरफ जाय- अन्दर जो गड़बड़ियां आ गई हैं तो रा-- निकल गई। म-- अब आने न पावें, फिर से। चुप हो गए। फिर मौका ताको, निकाल दो जो इकट्ठे हो गए हों-विकार। फिर निकाल दो, फिर बन्द कर दो रास्ता। इस तरह से निकालते-निकालते, विकार सब निकल जाएंगे, तो शुद्ध रहेगा। और फिर हृदय की कुर्सी में, जहां मोहरूपी रावण बैठा था, उसे मार कर गिरा दो और भगवान राम को बैठा दो। तो यह दूसरा विषय है। यह तो शरीर है। यह शरीर असत्य है।

सत्य तो आत्मा है, जो पारदर्शी है। वह इसके अन्दर है। उसे कोई-कोई जान पाता है। और इस शरीर को तो सब कोई जानता है। यह शरीर असत्य को बनाने के लिए असत्य की ही ज़रूरत है। बिगाड़ने के लिए भी असत्य की ही ज़रूरत है। अगर तुम्हारे सामने भूत आ जाय और तुम रायफल लिए हो, तो क्या गोली मारने से मर जायेगा? और अगर कोई डाकू आ जाय और तुम जन्त्र-मन्त्र से काम लो तो क्या वहॉ जन्त्र-मंत्र काम करेगा? उसके लिए बंदूक लगेगी, रायफल लगेगी। तो 'टिट फार टैट' जैसे को तैसा। छोटी-छोटी लड़कियां अपनी बहनों से, माता से जो सीख पाती हैं, वही सब करती हैं। कपड़े के गुड्डा-गुड़िया बनाती हैं-हो सकता है आज न बनाती होंगी, बाजार में बने बनाए मिल जाते होंगे। गुड्डा-गुड़िया की फिर शादी करेंगी-फिर बारात आएगी फिर बाजा, गाना-नाचना सब करेंगी। जितना होता है-शादी ब्याह में। फिर धीरे-धीरे वही लड़की जब बड़ी हो गई और माता-पिता ने शादी कर दी। तो फिर वह-गुड्डी वही छूट गई। ताक में पड़ी रह गई। फिर नहीं ध्यान देती है, उस गुड्डा की ओर वह लड़की। अब असली गुड्डा मिल गया-वह नकली काम नहीं करेगा। नकल से नकल को खतम करके, असल में जाना है। हम कहते हैं कि राम ने रावण को खतम करके, राक्षसों को खतम करके, बंदरों का त्याग कर दिया। और बंदर विनय कर रहे थे, कि भगवान अब आपको प्राप्त करके, हम क्या वहां नरक में जायें? सुग्रीव, अंगद, विभीषन, कोई जाने को तैयार नहीं था। लेकिन राम ने कहा, भाई अब मेरे दुश्मन कोई रह नहीं गए, तो मैं यह पलटन क्या करूंगा। अब मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। दुर्गुण थे, तो सद्गुणों की ज़रूरत थी। अब दुर्गुण चले गए, तो तुम भी जाओ। और अगर तुम नहीं जाओगे, तो दुर्गुण फिर जिन्दे हो जाएंगे। यह आटोमैटिक सिस्टम काम करेगा। इसलिए परेशानी कौन भोगेगा? फिर से दुश्मन आ जाएंगे-परेशान करने। कोई इतने से पूरा नहीं हुआ-सीता का परित्याग कर दिया। दुर्गुणों का त्याग किया, सद्गुणों को भी त्याग दिया-योगी का काम है। शक्ति का त्याग नहीं करता, तो वह परम्परा खतम हो जायेगी। दुर्गुणों का त्याग करके, सद्गुणों को त्याग नहीं करता, तो परंपरा खतम हो जायगी। उसूल की परंपरा खत्म हो जायेगी। जो निवृत्ति मार्ग की ओर जाने वाली परंपरा है, वह खतम हो जाएगी तो राम चेता। और फिर सीता का त्याग किया। त्याग का त्याग किया, और त्याग के त्याग का त्याग किया। दुर्गुणों का त्याग करके, सद्गुणों को लिया, और फिर सद्गुणों का त्याग करके, ताकत लिया, और फिर उस ताकत का भी त्याग करके, तत्व में लीन हो गया। सबसे उच्च कोटि-जो सुप्रीम लेबल है। वह उत्तम पुरुष अलग है। सुप्रीम लेबल का वह तत्व आत्मा है। उसे

पाना है। उसमें मुकाम बनाना चाहिए। यह हायर लेबल का ईश्वर नहीं–सुप्रीम लेबल पर। जहां सर्कुलेशन खतम हो जाय। इस तरीके से ध्येय आना चाहिए, तब साधक की संसार से निवृत्ति होगी।

इसमें पूर्वजन्म के पुण्य भी काम करते हैं। अनेक जन्म की बनी बनाई इनर्जी को पुण्य कहते हैं। मैटर नहीं, इनर्जी। शुद्ध शक्ति के रूप में, जिसका कहीं भी प्रयोग किया जाय। वह शुद्ध क्षमता, उसकानाम पुण्य होता है, हिन्दी में। अनेक जन्मों की कमाई जो है,वह इनर्जी। जन्म जन्म में किये गये अपने शुभ कर्तव्यों का पुण्य के रूप में रूपान्तरण हो जाता है–वह जमा रहता है। जब साधक आगे बढ़ना चाहता है साधना में, और अगर उसके पास पुण्य नहीं है, तो वह आगे नहीं बढ़ सकता है। तो पुण्य में इतनी बड़ी ताकत है, कि जैसे शरीर रूपी गाड़ी है, तो इसमें पुण्य रूपी पेट्रोल है। हृदयरूपी इंजन है। गाइड गुरु उसका चालक है। ब्रेन बैटरी है। दशो इंद्रियां टायर ट्यूब हैं। और संसार एक दुर्गम घाटी है। सत्य–रोड है, सच्चाई। तो उसमें अगर चढ़ा ले जाय। अगर गाइड संसार रूपी घठिया के ऊपर चढ़ा दे, तो ईश्वर मिल जाय, संसार रूपी घटिया के ऊपर। इसमें कोई गड़बड़ी आ जायगी–इंद्रियां बहकने लगें, कोई चक्का इधर जा रहा है, कोई उधर जा रहा है, तो हो गया फिर। या फिर ब्रेन काम नहीं करता तो स्टार्ट ही नहीं हो रही गाड़ी। बिना पेट्रोल के चलेगी ही नहीं। इसलिए सांगोपांग सही रूप बन जाय तब साधना सफलीभूत होती है।

हरिः